महाभाष्य में लौकिक-न्याय एवं लोकोक्तियाँ

डॉ० ललित कुमार मण्डल

महाभाष्य में लौकिक-न्याय एवं लोकोक्तियाँ

डॉ० ललित कुमार मण्डल

एम०ए०, पीएच०डी०

संस्कृत ग्रन्थागार

दिल्ली-अहमदाबाद

प्रकाशक :
संस्कृत ग्रन्थागार
१०९, अग्रवाल प्लाजा
सेक्टर-१४, रोहिणी, दिल्ली ११००८५
फोन : ०११-६५४४१५१६

प्रमुख वितरक :
परिमल पब्लिकेशन्स
२७/२८, शक्ति नगर,
दिल्ली - ११०००७
फोन : २३८४५४५६, ४७०१५१६८
e-mail : order@parimalpublication.com

शाखा-
एफ-३, प्रथम तल, रम्भा कोम्प्लेक्स
आश्रम रोड, गूजरात विद्यापीठ के सामने
अहमदाबाद

प्रथम संस्करण २००९

© लेखक

ISBN : 978-81-907958-7-6

मूल्य- २००/- रुपये

मुद्रक :
विशाल कौशिक प्रिंटर्स
नजदीक जी.टी.बी. हास्पिटल
जगतपुरी विस्तार, दिल्ली - ११००९१

परम पूजनीया
त्याग की प्रतिमूर्ति
आजीवन कष्ट सहने वाली
सदैव स्नेहछाया प्रदान करने वाली
दिवङ्गता माता
और
परम पूज्य दिवङ्गत पिताजी
को समर्पित

विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
शुभ-आशंसा	vii
प्राक्कथन	ix
कृतज्ञताज्ञापन	xvi
सङ्केत-सूची	xviii
विषय-सूची	xx

प्रथम-सोपान

१. प्रथम अध्याय :	१-७
महाभाष्य एवं पतञ्जलि की व्यापक जीवन-दृष्टि	
२. द्वितीय अध्याय :	८-१०
न्याय, लोकोक्ति, कहावत, मुहावरा तथा सूक्ति का स्वरूप	
३. तृतीय अध्याय : धार्मिक एवं सांस्कृतिक लौकिक-न्याय	११-१७
अभ्यर्हित-न्याय	११
इन्द्रोपस्थिति-न्याय	१२
दीर्घसत्र-न्याय	१४
गुरुपुत्र-न्याय	१५
आम्रसेकपितृतर्पण-न्याय	१६
अग्नौ करवाणि-न्याय	१६
४. चतुर्थ अध्याय : दार्शनिक लौकिक-न्याय	१८-२३
अन्वयव्यतिरेक-न्याय	१८
धूमाग्नि-न्याय	१९
मृगतृष्णा-न्याय	२०
स्थालीपुलाक-न्याय	२२

अलातचक्र-न्याय	२३
त्रिविष्टब्धकपरिव्राजक-न्याय	२३
५. पञ्चम अध्याय : व्यावहारिक लौकिक-न्याय	२४-४३
अनग्निशुष्कैध-न्याय	२४
कूपखानक-न्याय	२५
अन्यतरोपदेश-न्याय	२६
भक्ष्याभक्ष्य-न्याय	२७
गम्यागम्या-न्याय	२७
सामान्यविशेष-न्याय (उत्सर्गापवाद-न्याय)	२७
फलव्यतिरेक-न्याय	२९
व्यपदेशि-न्याय	३०
ज्येष्ठकनिष्ठपुत्र-न्याय	३१
तक्रकौण्डिन्य-न्याय	३१
नष्टाश्वदग्धरथ-न्याय	३२
एकदेशविकृत-न्याय	३४
छिन्नकर्णपुच्छश्वा-न्याय	३५
आमिश्री-न्याय	३५
गोयूथ-न्याय	३६
शालिकुल्या-न्याय (कुल्याप्रणयन-न्याय)	३७
गौणमुख्य-न्याय	३८
प्रतिनिधि-न्याय (उपाध्यायशिष्य-न्याय)	३९
धान्यपलाल-न्याय (सतुषपलालधान्य-न्याय)	४०
गुरुताडन-न्याय	४१
कृत्रिमाकृत्रिम-न्याय	४२
मत्स्यकण्टक-न्याय	४३
६. षष्ठ अध्याय : सामाजिक लौकिक-न्याय	४४-५४

मातृवत्स-न्याय ४४
पितामहोत्सङ्गदारक-न्याय ४५
पितापुत्र-न्याय ४५
प्रासादवासि-न्याय ४६
अर्धजरतीय-न्याय ४८
सम्बन्धिशब्द-न्याय ५०
ब्राह्मणवत्क्षत्रियवर्तन-न्याय (सामान्यातिदेश-न्याय) ५१
देवदत्तहन्तृहत-न्याय ५२
समुदायवाक्यपरिसमाप्ति-न्याय (गर्गशतदण्ड न्याय) ५२
प्रत्यवयववाक्यपरिसमाप्ति-न्याय ५३
७. **सप्तम अध्याय :** प्राकृतिक लौकिक-न्याय ५५-६०
पर्जन्यवर्षण-न्याय ५५
मण्डूकगति-न्याय (मण्डूकप्लुति-न्याय) ५६
प्रकृतिविकार-न्याय (प्रकृतिविकृति-न्याय) ५७
आदित्यगति-न्याय ५८
शकुनि-न्याय ५९
वृक्षस्थावतान-न्याय ६०
८. **अष्टम अध्याय :** विविध लौकिक-न्याय ६१-७३
दुष्टशब्द-न्याय ६१
वर्धमानगर्भ-न्याय ६२
सन्नियोगशिष्ट-न्याय ६३
वस्त्रान्तर्हितद्रव्य-न्याय ६४
वृद्धकुमारीवरवाक्य-न्याय ६५
नटभार्या-न्याय (नटाङ्गना-न्याय) ६७
इतरेतराश्रय-न्याय ६८
उभयनिमित्त-न्याय ६९

कुम्भीधान्य-न्याय ६९
अव्यविक-न्याय (अविरविक-न्याय) ७०
सकृद्बाध-न्याय (सकृद्गति-न्याय) ७१
सूत्रशाटक-न्याय (सूत्रशाटिका-न्याय) ७२

द्वितीय सोपान

९. **नवम अध्याय :** धार्मिक एवं सांस्कृतिक लोकोक्तियाँ ७४-७९
आम्राश्च सिक्ता: पितरश्च प्रीणिता: ७४
आ वनान्तादा उदकान्तात् प्रियं पान्थमनुव्रजेत् ७६
न हि द्विपुत्र आनीयतामित्युक्ते त्रिपुत्र आनीयते ७७
तीर्थकाका न चिरं स्थातारो भवन्ति ७८
१०. **दशम अध्याय :** दार्शनिक लोकोक्तियाँ ८०-८९
भवति वै प्रत्यक्षादप्यनुमानबलीयस्त्वम् ८०
११. **एकादश अध्याय :** सामाजिक लोकोक्तियाँ ८२-
न हि 'भिक्षुका: सन्ति' इति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते ८२
न हि देवदत्तस्य हन्तरि हते देवदत्तस्य प्रादुर्भावो भवति ८३
भिक्षुको द्वितीयां भिक्षां समासाद्य पूर्वां न जहाति ८५
नात्यन्तायाज्ञानं शरणं भवितुमर्हति ८६
कृतो घटो घटाश्रयाणां कार्याणां निमित्तं भवति, न क्रियमाण: ८७
सामृतै: पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितै: ८८
१२ **द्वादश अध्याय :** व्यावहारिक लोकोक्तियाँ ९०-९६
न हि भुक्तवान् पुनर्भुङ्क्ते ९०
प्रदीप: सुप्रज्वलित: सर्वं वेश्माभिज्वलयति ९१
नौर्नावि बद्धा नेतरेतरत्राणाय भवति ९२
न ह्यन्तरेण प्रतियोगिनं स्पर्धा भवति ९३
पर्याप्तो ह्येक: पुलाक: स्थाल्या निदर्शनाय ९३

श्वा कर्णे वा पुच्छे वा छिन्ने श्वैव भवति नाश्वो न गर्दभः ९४
एकश्च तण्डुलः क्षुत्प्रतिघातेऽसमर्थः ९४
सर्व इमे स्वभूत्यर्थं प्रवर्तन्ते ९४
१३. त्रयोदश अध्याय : विविध लोकोक्तियाँ ९७-१०७
प्रधाने कृतो यत्नः फलवान् भवति ९७
वृक्षः प्रचलन् सहावयवैः प्रचलति ९९
न हि गोधा सर्पन्ती सर्पणादहिर्भवति १००
अन्यार्थं प्रकृतमन्यार्थं भवति १०१
अग्निर्यददग्धं तद्दहति १०१
रथाङ्गानि विहतानि प्रत्येकं व्रजिक्रियां प्रत्यसमर्थानि भवन्ति १०२
द्वयो रक्तयोर्वस्त्रयोर्मध्ये शुक्लं वस्त्रं तद्गुणमुपलभ्यते १०३
सार्थिकानामेकप्रतिश्रये उषितानां न कश्चित् परस्परमभिसम्बन्धो भवति। १०४
अपवादैरुत्सर्गा बाध्यन्ते १०५
वृक्षस्थोऽवतानो वृक्षे छिन्नेऽपि न विनश्यति १०५
तप्ते भ्राष्ट्रे तिलाः प्रक्षिप्ताः मुहूर्तमपि नावतिष्ठन्ते १०६

तृतीय सोपान

उपसंहार १०८
परिशिष्ट-१: लौकिक-न्यायों की पृष्ठाङ्कपूर्वक वर्णानुक्रमणी ११३
परिशिष्ट-२: लोकोक्तियों की पृष्ठाङ्कपूर्वक वर्णानुक्रमणी ११६
सन्दर्भग्रन्थ-सूची ११७

प्रथम सोपान

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

महाभाष्य एवं पतञ्जलि की व्यापक जीवन-दृष्टि

संसार की उपलब्ध सभी भाषाओं में संस्कृत प्राचीनतम भाषा है। भाषा को एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित रूप व्याकरण प्रदान करता है। संस्कृत वाङ्मय में व्याकरणशास्त्र का अपना विशिष्ट स्थान है। प्राचीन काल से इसकी गणना वेदाङ्गों में की जाती है—''प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्'' (महा० पस्पशाह्निक)। अतः, भाषा के सन्दर्भ में व्याकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है— **मुखं व्याकरणं स्मृतम्।**

आज संस्कृत-भाषा के प्रसङ्ग में जब व्याकरण का नाम लिया जाता है, तो तत्काल हमारे समक्ष पाणिनि-प्रोक्त ही व्याकरण उपस्थित होता है। पाणिनि ने सूत्र[१]-शैली में संस्कृत के —वैदिक एवं लौकिक —दोनों प्रकार के शब्दों के स्वरूप तथा प्रकृति को *अष्टाध्यायी* की रचना करके नियत कर दिया।

पाणिनि की त्रुटि को दूर करने और उनकी कमी की पूर्ति करने के लिए कात्यायन ने *अष्टाध्यायी* पर *वार्त्तिक*[२] की रचना की।

अष्टाध्यायी और *वार्त्तिक* सूत्र रूप में होने के कारण वे व्याख्यान की अपेक्षा रखते थे, जिसकी पूर्ति महर्षि पतञ्जलि ने की। पाणिनीय व्याकरण को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिए पतञ्जलि ने *वार्त्तिक*-सहित *अष्टाध्यायी* पर ८५ आह्निकों[३] में *महाभाष्य* की रचना की। इस प्रकार पाणिनीय-व्याकरण को

---

१. संक्षेप, गागर में सागर।
२. ''उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते। तं ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः''।।
३. अह्ना निर्वृत्तमित्याह्निकम् यानी एक दिन में रचित या अध्यापित होने वाला भाग।

त्रिमुनि-व्याकरण कहा जाता है और जहाँ कहीं भी इन तीनों में मतभेद अथवा विरोध होता है, तो वहाँ पाणिनि और कात्यायन की अपेक्षा पतञ्जलि को ही प्रमाणभूत माना जाता है — **यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्।**

'शाबर', 'शाङ्कर' आदि तो केवल 'भाष्य[१]' कहलाते हैं; किन्तु पतञ्जलि-प्रणीत भाष्य को *महाभाष्य* कहा जाता है। क्योंकि, यह केवल व्याकरण-शास्त्र का ही नहीं, प्रत्युत अनेक विषयों का आकर-ग्रन्थ है। इसमें पतञ्जलि ने

अध्याय	पाद	आह्निक	अध्याय	पाद	आह्निक
१	१	९	५	१	१
१	२	३	५	२	२
१	३	२	५	३	२
१	४	४	५	४	१
		१८			७
२	१	३	६	१	६
२	२	२	६	२	२
२	३	३	६	३	३
२	४	२	६	४	४
		१०			१५
३	१	६	७	१	२
३	२	३	७	२	२
३	३	२	७	३	२
३	४	१	७	४	१
		१२			७
४	१	४	८	१	२
४	२	२	८	२	२
४	३	२	८	३	२
४	४	१	८	४	१
		९			७

१. "सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः"।। पराशर उपपुराण, प्रदीपोद्योत छाया के प्रारम्भ में उद्धृत

व्याकरण के दुरूह तथा अगम्य तथ्यों को बोधगम्य बनाने और उन्हें सरलतापूर्वक तथा मनोरम ढंग से समझाने के लिए शङ्काओं को सामने रख कर उन पर यथार्थ रीति से विचार करने के बाद समाधान करने की शैली को अपनाते हुए यथास्थान अनेक घरेलू दृष्टान्त-वाक्यों और लोक-प्रचलित उक्तियों का प्रयोग किया है। इन घरेलू दृष्टान्त-वाक्यों (**लौकिक-न्यायों**) तथा लोक प्रचलित उक्तियों (**लोकोक्तियों**) में तत्कालीन **धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, व्यावहारिक, सांस्कृतिक** आदि प्रवृत्तियाँ प्रतिबिम्बित होती हैं। *महाभाष्य* सूत्रों का विशद व्याख्यान ही नहीं, अपितु व्याकरण-दर्शन के साथ विभिन्न मत-मतान्तरों की प्रस्तुति वाला **कोषग्रन्थ** है। सूत्रों और वार्त्तिकों की समीक्षा (व्याख्यान) करने के क्रम इन्होंने ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन, इतिहास, साहित्य, लोकप्रथा, समाज, लोकोक्ति, न्याय आदि विषयों का विवेचन किया है, जिनसे पतञ्जलि की व्यापक जीवन-दृष्टि दृष्टिगत होती है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने महाभाष्य में आद्योपान्त 'चूर्णिका-शैली[१]' तथा 'तण्डक-शैली[२]' को अपनाया है। 'चूर्णिका-शैली'; जैसे कि 'व्याकरण' शब्द का अर्थ बताने के क्रम में सिद्धान्त-पक्षी ने पूर्व-पक्षी को बताया —

'लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्[३]' (*वा०*)

सिद्धान्त० — **लक्ष्यं च लक्षणं चैतत्समुदितं व्याकरणं भवति।**

पूर्व० — **किं पुनर्लक्ष्यम्, किं लक्षणम्?**

सिद्धान्त० — **शब्दो लक्ष्यः, सूत्रं लक्षणम्।**

पुनश्च 'तण्डक-शैली' का दृष्टान्त; 'शब्द के ज्ञान में अथवा प्रयोग में धर्म होने की चर्चा' के प्रसङ्ग में[४] जब ज्ञान में धर्म होने की बात की सम्भावना को देखकर पूर्वपक्षी ने तर्कपूर्वक कहा — **'ज्ञाने धर्म इति चेत्तथाऽधर्मः प्राप्नोति'**,

१. एक-एक शब्द को अलग करके उसका अर्थ समझाने वाली शैली।
२. सिद्धान्तों के ऊहापोह करने में वह भारी-भरकम ओजस्वी सिंहमुखी शैली, जो हाथी के समान सम्पूर्ण शरीर को घुमा कर नागावलोकन-दृष्टि से पीछे की ओर देखती हुई विषय से आमने-सामने जूझती है।
३. *व्या०महा० भा० १ पृ० ७९*
४. *व्या०महा० भा०— पृ० ७२-७५*